Chap-1

प्रथम अध्याय

साठोत्तरी हिन्दी कथा–साहित्य की पूर्वभूमिका : वैचारिक बदलाव और नए मूल्यों की स्थापनाएँ

प्रारंभ :

हिन्दी कथा-साहित्य का प्रारम्भिक रुप अधिकांशतः संस्कृत वाङ्मय से उपकृत रहा है। यह प्रभाव अनूदित रचनाओं के रुप में, अन्तर्कथाओं के रुप में, कथा वचन के रुप में, दृष्टांत साहित्य के रुप में या फिर इससे अनुप्रेरित चरित्रांकन के रुप में देखा जा सकता है। हिन्दी कथा-साहित्य का प्रारम्भ वस्तुतः संस्कृत के पौराणिक ग्रन्थों के अनुवाद के रुप में प्रारम्भ हुआ था, जिसे स्वतन्त्र लेखन न मानकर मूल ग्रन्थ के अनुलेखन के रुप में या ग्रन्थांश के रुप में स्वीकार किया गया था। इस सन्दर्भ में सबसे बड़ा प्रदान कथा वाचकों का रहा, जिन्होंनें परिमाण के रुप में एक बहुत बड़ा योगदान हिन्दी के लिए प्रस्तुत किया। इनमें श्रीमद् भागवत्, विष्णु पुराण, गरुड-पुराण, शिव-पुराण, देवी भागवत, दुर्गा सप्तशती, वराह् पुराण, श्रीमद भावगत गीता, पंचतन्त्र हेतु उपदेश, कथा-सरित सागर, वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि पौराणिक ग्रन्थों के अनुवाद भाषा के रुप में प्रस्तुत हुए। हालाँकि इस प्रकार के अनुवादों की भाषा आँचलिक बोलियों से सम्पृक्त रही है, और यदि कहीं हिन्दी खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है, तो उसमें अवधी और ब्रजभाषा का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है।

व्यास शैली में प्रस्तुत तथा कथक्कड़ी भाषा में रचा गया यह अनुवाद वस्तुतः गद्य की स्वतन्त्र विद्या के रुप में स्थापित न होकर उपजीवी साहित्य के रुप में ही नगण्य बना रहा। जिसमें मुख्य प्रभाव पौराणिक ग्रन्थ की मूलकथा का रहता था, जिसके द्वारा भावुक, श्रद्धालु, भक्त एवम् विद्वान लोग श्रद्धा से ही उस कथा-प्रवाह में निमग्न हो जाते थे, भाषा की स्वतन्त्रत सत्ता वहाँ केन्द्र में न रहती थी। इस प्रकार की व्यास शैली में अनूदित रचनाएँ भाषा से शैथिल्य को और कथ्य के अनावश्यक विस्तार को साम्य रखते हैं।

इसी प्रकार बहुत सारे संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद भी हिन्दी में रुपान्तरित होकर सामने आए, जिनमें कुछ अनुवाद आचार्य भगवत् के स्वरुप, पंडित गोपाल जी, श्री राम शर्मा तथा कल्याण के विशेष अंको के द्वारा प्रस्तुत हुए हैं। ये सभी अनुवाद धीरे-धीरे परिमार्जित होते हुए शुद्ध खड़ी बोली में आ गए हैं, किन्तु फिर भी स्वतन्त्र रुप से इनका मूल्यांकन अभी तक नहीं किया गया और इन्हें साहित्य से उपेक्षित ही रखा गया है।

एक अन्य भाषारुप लोक-कथाओं के माध्यम से भी सामने आता है, जिसमें अति सामान्य व्यक्तियों द्वारा अंचल में प्रसिद्ध लोक कथाओं को भाषा में निबद्ध करके प्रस्तुत किया गया है। ये लोक कथाएँ विभिन्न संस्कारों, लोकोत्सवों, दन्तकथाओं तथा लोक में व्याप्त प्रचलित मौखिक कथाओं के रुप में प्रस्तुत हुई हैं। इनमें तोता-मैना की कहानी, शिरी-फरहाद की कहानी, लैला-मजनू की कहानी, आल्हा-ऊदल की कहानी जैसी अनूदित पुस्तकें आज भी प्राप्त होती हैं। इनके अलावा कुछ पौराणिक प्रसंगो को लेकर भी धार्मिक कहानियों एवम् नाटकों का भी प्रकाशन हुआ है, जिनमें कथा लव-कुश की, जानकी-वनोवास, भरत का राम-प्रेम, धनुष-यज्ञ, अश्वमेघ-यज्ञ, कैकेयी का कोप, दशरथ-मरण, राम-रावण युद्ध, शिव की बारात, तक्ष यज्ञ, पार्वती की तपस्या, कार्तिकेय की कथा, भक्त प्रहलाद, भक्त ध्रुव, अजामिल की कथा, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की कथा, राजा मोरध्वज की कथा, अगत्स्य की कथा, द्रौपदी चीर हरण, कंस-वध, वृन्दावन लीला, कालीदह-लीला जैसी अनेक कथावार्ताओं के आधार पर सृजित धार्मिक सन्दर्भों से जुड़ी धार्मिक कहानियाँ, नाटक एवम् कथाएँ हिन्दी में यत्र-तत्र पर्याप्त मिल जाती है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ

से ही गीता प्रेस, गोरखपुर का योगदान इस प्रसंग में सर्वोपरि रहा है। सन् 1950 के बाद कल्याण के माध्यम से धार्मिक कथा-वार्ताओं की छोटी-बड़ी अनेक पुस्तकें लागत मूल्य पर उपलब्ध कराई गयी, जिनके द्वारा हिन्दू धर्मावलम्बियों में धार्मिक आस्था से संलग्न एक विशेष पाठक वर्ग तैयार हुआ, किन्तु फिर भी इस प्रकार के अनूदित या अनुप्रेरित हिन्दी साहित्य को स्वतन्त्र रुप से महत्व नहीं मिल सका।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अर्थात् स्वातन्त्र्योत्तर काल तक हिन्दी गद्य व्यस्थित रुप से स्थापित हो चुका था, इसका शुभारम्भ परिष्कृत रुप में भारतेन्दु बाबु हरिश्चन्द्र से माना जा सकता है, जिन्होंने 'अन्धेर नगरी' जैसी एकांकियॉ लिखकर हिन्दी गद्य के लालित्य को प्रस्थापित किया तथा अनेक अनूदित कथाओं एवम्- स्वतन्त्र लेखों के माध्यम से हिन्दी गद्य को एक व्यवस्थित संस्कार के रुप में प्रतिष्ठित किया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अनेक नाटक, लेख, कथा, संस्मरण एवम् शोध-निबंध लिखे हैं। इनके नाटकों में निम्नलिखित गद्य नाटक प्रकाशित हैं - विद्या सुन्दर, रत्नावली, पाखण्ड विडम्बन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, प्रेम जोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, कर्पूरमञ्जरी, श्री चन्द्रावली, भारत-दुर्दशा, भारत-जननी, नीलदेवी, दुर्लभबन्धु, अन्धेर नगरी, सती प्रताप, सबै जाति गोपाल की, बसंत पूजा, क्षाति विवेकिनी सभा, संडभड़यो : संवाद, रणधीर प्रेम मोहिनी, श्री रामलीला, नाटक आदि।

इनकी गद्य रचनाओं में ऐतिहासिक तथ्यों से संलग्न तथा ऐतिह्य घटनाओं से युक्त कुछ लेख इस प्रकार हैं - "अगरवालों की उत्पत्ति, चरितावलि में - विक्रम, कालिदास, रामानुजाचार्य, शंकराचार्य, जयदेव, पुष्पदंताचार्य, वल्लभाचार्य, सूरदास, सुकरात, नेपालियन तृतीय, लार्डश्यो, लार्ड लॉरेन्स, महाराजाधिराज जार, कुंडलियाँ।

पुरातत्व संग्रहों में : अकबर और औरंगज़ेब, कन्नौज के राजा का दानपत्र, क्वीन्स कॉलेज के फाटकों के लेख, इंडियन म्युज़ियम अशोक, चार दिवाली तथा बोध गया के लेख, राजा जन्मेजय का दान पत्र, मंगलीश्वर का दान पत्र, मणिकर्णिका, काशी शिवपुर का द्रौपदीकुंड, पंपापुर का

दानपत्र, कन्नौज का दान पत्र नाम, मंगला का दान पत्र, चित्रकूटस्थ रमाकुंड, गोविन्द देवजी की प्रशस्ति, सारनाथ आदि के लेख, प्राचीन काल का संवत् निर्णय।

महाराष्ट्र देश का इतिहास, दिल्ली का दरबार दर्पण, उदय पुरोदय, खत्रियों की उत्पत्ति, बूँदी का राजवंश, काश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण, कालचक्र, रामायण का समय, पंचपवित्रात्मा में – मुहम्मद, बीवी फातिमा, अली, इमाम हसन और इमाम हुसैन, तालिका ।

धार्मिक रचनाओं में : कार्तिक, नैमित्तिक कृत्य, कार्तिक कर्म विधि, मार्गशीर्ष महिमा, माघस्नान विधि, पुरुषोत्तम मास विधान, भक्ति सूत्र, वैजयन्ती, वैष्णव सर्वस्व, श्री वल्लभीय सर्वस्व, दूषणमालिका, तहकीकात पुरी की तहकीकात, अष्टादश पुराण की उपक्रमणिका, उत्सवावली, हिन्दी कुरान शरीफ, चतुश्लोकी श्रुतिरहस्य, ईशू खूष्ट वा ईश कृष्ण, वैष्णवत्ता और भारतवर्ष।

आख्यानों में : मदालसोपाख्यान, एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती।

प्रहसनात्मक में : स्वर्ग में विचार सभा, स्तोत्र पंचरत्न (वेश्यास्त बराज; स्त्रीसेवा पद्धति; मदिरास्त वराज; ईश्वर बडा विलक्षण है), मुशायरा, पांचवे (चूसा) पैगंबर, कानून ताजीरात शौहर, भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?, संगीत सार, खुशी जातीय संगीत, लेवी प्राण लेवी, हरिद्वार (दो पत्र), लखनऊ, जबलपुर, सरयूपार की यात्रा, वैद्यनाथ की यात्रा, जनकपुर की यात्रा, सम्पादक के नाम पत्र (रसों के सन्दर्भ में), हिन्दी भाषा, ग्रीष्म ऋतु, एजूकेशन कमीशन एबीडेन्स ऑफ वावू हरिश्चन्द्र, लेखक और नागरी लेखक, परिहासिनी, भारतेन्दु बाबू के महत्व के पत्र, पत्रकार कर्म, सम्पादकीय लेख, विज्ञापन–सूचनाएँ और खबरें, हिन्दी कविता और हिन्दी भाषा।

विविध : गुरु सारणी की भूमिका, कविता बद्धिनी सभा द्धारा दिया जाने वाला प्रंशंसा पात्र, तदीय समाज के समक्ष दिया गया शपथ पत्र, वैष्णव परीक्षा।"[1]

उपर्युक्त, लेखों के परिमाण को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी गद्य के प्रस्थापन में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का योगदान अप्रतिम रहा है। विद्या सुन्दर नाटक की भूमिका में भारतेन्दु बाबू द्वारा प्रस्तुत भाषा के उदाहरण दृष्टव्य है - "विद्या सुन्दर की कथा बंग देश में अति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि चोर कवि जो संस्कृत में चौर पंचाशिका का कवि यही है सुन्दर है। कोई इस चौर पंचाशिका को वररुचि की बनाई मानते हैं। जो कुछ हो विद्यापति की आख्यायिका का मूल सूत्र वही चौर पंचाशिका है। प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय ने इस उपाख्यान को बंगभाषा में काव्य स्वरुप में निर्माण किया है, और उसकी कविता ऐसी उत्तम है कि बंग देश में आबाल वृद्ध बनिता सब उसको जानते हैं। महाराज यतीन्द्र मोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलम्बन करके जो विद्या सुन्दर नाटक बनाया था, उसी की छाया लेकर आज पन्द्रह बरस हुए यह हिन्दी भाषा में निर्मित हुआ है। विशुद्ध हिन्दी भाषा के नाटकों के इतिहास में यह चौथा नाटक है। निवाज का शकुन्तला या ब्रजवासीदास का प्रबोध चन्द्रोदय नाटक नहीं काव्य है, इससे हिन्दी भाषा में नाटकों की गणना की जाए तो महाराज रघुराजसिंह का आनंद रघुनन्दन और मेरे पिता का नहुष नाटक यही दो प्राचीन ग्रन्थ भाषा में वास्तविक नाटककार मिलते हैं। यों नाम को तो देवमाया प्रपंच समयसार इत्यादि कई भाषा ग्रन्थों के पीछे नाटक शब्द लगा दिया है। इनके पीछे शकुन्तला का अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह ने किया है। यदि पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों को ब्रजभाषामिश्र होने के कारण हिन्दी न मानो तो विद्यासुन्दर नाटक गुणों में अद्वितीय न होने पर भी द्वितीय है। पश्चिमोत्तर देश की मान्य गवर्नमेन्ट ने इसकी एक सौ पुस्तक लेकर इसका मान बढाया है। पूर्व आवृत्ति की अत्यन्ताभाव इसकी पुनरावृत्ति का कारण है।"[2]

भारतेन्दु बाबू द्वारा प्रयुक्त हिन्दी की गद्य शैली पर्याप्त विकसित और व्यवस्थित थी। इनके समय में और भी अनेक समृद्ध साहित्यकार सामने आए, जिन्होंने हिन्दी गद्य में अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इनमें प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनाथ चौधरी, बालमुकुन्द गुप्त, ठाकुर जगमोहनसिंह, बालकृष्ण भट्ट, श्रीधर पाठक, रामचन्द्र वर्मा, रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसे विद्वान गद्यकार हुए हैं। उस समय के हिन्दी गद्य पर एक ओर तो धार्मिक ग्रन्थों का प्रभाव था, तो दूसरी ओर समाज-सुधारकों एवम् राजनेताओं का भी प्रभाव इस पर पड़ा है। धर्म क्या है - साकार,

निराकार, कृष्ण, राम, हनुमान आदि का रूप, द्वैत-अद्वैत, यज्ञ, जप-तप आदि विविध विषयों के साथ-साथ अशिक्षा, मद्यपान, वर्ण-भेद, स्त्री शिक्षा, बाल-विवाह तथा बहु-विवाह विरोध, विधवा-विवाह, अन्धविश्वास और कुरीतियाँ जैसे विषयों पर गद्य में लेख लिखे गए। इन लेखों के माध्यम से पाठक वर्ग को नैतिक मूल्यों से जोड़कर उसे उदारवादी बनाना था।

हिन्दी गद्य के प्रारम्भ में नाटकों का प्रचलन संभवतः सर्वाधिक था। लाला श्रीनिवास द्वारा रचित - 'सप्त संवरण', प्रहलाद चरित, संयोगिता स्वयंवर तथा रणधीर प्रेम मोहिनी आदि सुन्दर नाटक हैं। बाबू सीताराम का कीर्तिकितु तथा बद्रीनारायण 'प्रेमघन' के भारत सौभाग्य, प्रयाग राम-गमन, वीरांगना रहस्य आदि नाटकों में भाषा की संतुलित व्यवस्था को स्थापित किया गया है।

इस युग में मौलिक और अनूदित दो प्रकार के नाटक लिखे गए। मौलिक नाटकों में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त किशोरीलाल गोस्वामी का चौपट-चपेट और मयंक-मञ्जरी; अयोध्यासिंह उपाध्याय के रुक्मिणी परिचय तथा प्रद्युम्न विजय व्यायोग, ज्वाला प्रसाद मिश्र का सीता वनवास; बलदेव प्रसाद मिश्र के प्रभास मिलन, मीराबाई तथा लल्लाबापू; बाबू शिवनन्दन सहाय का 'सुदामा' नाटक तथा रायदेवी प्रसाद पूर्ण का चन्द्रकला, भानूकुमार नाटक आदि अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध रहे हैं।

दूसरी ओर, अनूदित नाटकों का अवतरण अधिकतर संस्कृत, बंगला या अंग्रेजी नाटकों से हुआ। लाला सीताराम बी.ए. नें संवत 1944 में 'नागानन्द' का अनुवाद किया। इनके साथ ही मालती-माधव, मालविकाग्नि मित्र, उत्तर रामचरित, प्रतिमा नाटक, महावीर चरित, मृच्छकटिक, शाकुन्तल आदि नाटक हिन्दी में 'वेणी-संहार' तथा 'अभिज्ञान शाकुन्तल' जैसे प्रसिद्ध नाटक लिखे। इसी तरह बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा अनुवादित 'रत्नावली नाटक' भी इस काल की सुन्दर नाट्य कृति है।

बाबू रामकृष्ण वर्मा ने वीरनारी, कृष्णकुमारी एवं पद्मावती नाटक मूल बंग्ला से हिन्दी में

अनुवाद करके लिखे। बाद में गोपालराम गहमरी ने चित्रांगदा, प्रिया-विनोद, देश-दशा, बभ्रुवाहन तथा वनवीर आदि नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किए। इसी श्रृंखला में गोपीनाथ पुरोहित ने अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किए, जिनमें शेक्सपीयर के रोमियो-जुलियट, एज़ यू लाईक इट तथा मर्चेन्ट ऑफ वेनिस आदि नाटक काफी लोकप्रिय रहे। इसी प्रकार मथुराप्रसाद चौधरी ने मेंकैबथ का अनुवाद 'साहसेन्द्र साहस' नाम से किया। फिर बाद में 'हेमलेट' का भी हिन्दी अनुवाद सामने आया।

हिन्दी के प्रारम्भिक कहानीकारों में इंशाअल्ला खाँ, राजा शिवप्रसादसिंह 'सितारेहिन्द', पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू गिरिजाकुमार घोष, बाबू रामप्रसाद घोष की सुपुत्री बंग महिला तथा मास्टर भगवानदास आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

उपन्यास लेखन में बाबू रामकृष्ण वर्मा, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, गोपालराम गहमरी, उदित नारायण लाल आदि का नाम विशेष रेखांकित किया जाता है।

मौलिक उपन्यास लेखन के क्षेत्र में बाबू देवकीनन्दन खत्री का योगदान सर्वोपरि सिद्ध हुआ है। जिनकी रचित चन्द्रकांता एवं भूतनाथ औपन्यासिक कृतियाँ हिन्दी पाठकों में सर्वाधिक लोकप्रिय रही हैं। खत्रीजी को तिलिस्मी और ऐय्यारी से पूर्ण उपन्यासों का जन्मदाता माना जाता है। इनके साथ ही पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता आदि का नाम भी उल्लेखनीय है।

निबन्ध लेखन में बाबू हरिश्चन्द्र के पश्चात् मुंशी ज्वालाप्रसाद, बाबू तोताराम, बाबू कार्तिक प्रसाद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, माधव-प्रसाद मिश्र, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' गोपालराम गहमरी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्द नारायण मिश्र, बाबू श्याम सुन्दर दास, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि का प्रदान भी महत्वपूर्ण रहा है।

इस युग की वैचारिक प्रबुद्धता को प्रदर्शित करने वाला आलोचना साहित्य पर्याप्त विकसित हो चुका था। इस संदर्भ में पंडित बद्रीनाथ चौधरी, लाला श्रीनिवास दास, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंडित गोविन्द नारायण मिश्र, राणा शिव प्रसाद सिंह, डा. नगेन्द्र आदि का नाम भी गौरव के साथ लिया जाता है।

इस युग में पत्र-पत्रिकाओं का हिन्दी में पर्याप्त प्रकाशन हुआ, जिसने हिन्दी गद्य को अनेक रोचक शैलियाँ प्रदान कीं, जिनमें, -"नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, रपट, संस्मरण, आलोचना, शोध-लेख, पत्र-साहित्य आदि शैलियों को मुखरित किया गया। हिन्दी की प्रारम्भिक विशिष्ट पत्र-पत्रिकाओं में उदंत-मार्तण्ड, बनारस अखबार, सुधाकर, कवि-वचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, बाला-बोधिनी, अलमोड़ा अखबार, हिन्दी दीप्ति प्रकाश, बिहार बन्धु, सदादर्श, काशी पत्रिका, भारतबन्धु, मित्र विलास, भारत मित्र, आर्यदर्पण, ज्ञान प्रदायिनी, सार सुधा निधि, उचित वक्ता, सज्जन कीर्ति सुधाकर, भारत सुदशा प्रवर्तक, आनंद कादम्बिनी, देश-हितैषी, दिनकर प्रकाश, धर्म दिवाकर, प्रयाग समाचार, ब्राह्मण शुभचिन्तक, सदाचार मार्तण्ड, हिन्दोस्तान, पीयूष-प्रवाह, भारत-जीवन, भारतेन्दु, कविकुलकंज दिवाकर, हिन्दी बंगवासी, व्यंकटेश्वर समाचार आदि विविध और बहुनामी पत्र-पत्रिकाएँ इसी समय प्रकाशित हुई, जिन्होंने हिन्दी शैलियों को समृद्धता प्रदान की।"[3]

हिन्दी कथा-साहित्य में एक बदलाव स्वतन्त्रता के बाद नजर आया, जब व्यक्ति स्वतन्त्र भारत की स्वच्छन्द हवा में सांस ले रहा था, इससे पहले, हिन्दी उपन्यासकार दासता (गुलामी) की मनः-स्थिति में स्वयं को विकलांग-सा अनुभव कर रहा था। स्वतन्त्रता की लड़ाई में जहाँ सामान्य जनमानस को एक सक्रिय उत्क्रांति के लिए अनुप्रेरित किया, वहाँ एक वैचारिक बदलाव का सन्दर्भ भी सामने आता है।

वस्तुतः स्वतन्त्रता का समय एक ऐसा संक्रान्तिकाल था, जहाँ बुद्धिजीवीवर्ग साहित्य में कथ्य सम्प्रेषित करने के लिए बडी ऊहापोह की स्थिति में बेचैन था।

हालांकि हिन्दी कर्ता 1950 तक अनेकानेक पड़ावों पर स्थापित होती हुई एक निश्चित रुप और सज्जा में प्रतिष्ठित हो चुकी थी, किन्तु हिन्दी का कथा-साहित्य पुराण-वाचन के जीर्ण सन्दर्भो से उलझा हुआ था। नई चेतना के नाम पर केवल मध्यवर्गीय पारिवारिक परिस्थितियों का लेखा-जोखा तैयार किया जा रहा था, अथवा उच्च मध्यवर्ग की पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित अँग्रेजी दा-सभ्यता के प्रभामंडल में भटक रहा था, इसीलिए इस काल को हम संक्रान्तिकाल कह सकते हैं। साठोत्तर काल हिन्दी कथा साहित्य के लिए बहु आयामी वैचारिक बदलाव लेकर प्रस्तुत हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल का प्रारम्भ सन् 1843 से अर्थात् संवत १९०० से माना है, लेकिन साहित्य के इस बदलते हुए नजरिए का यदि विहंगावलोकन किया जाए तो एक बड़ा बदलाव भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से अर्थात् सन् 1850 से ही अनुभव किया जा सकता है। भारतेन्दुकाल में ही भारत-मार्तण्ड, स्वदेशी, अमृतघन, कवि-वचन सुधा जैसी साहित्यिक पत्रिकाएँ हिन्दी साहित्य के बदलते हुए वैचारिक अनुभवों को व्यक्त कर रही थी। कुछ सहमे हुए और संकुचित होकर लोक शंकालु मन से बदलाव की ओर आकर्षित हो रहे थे, किन्तु पुरातन और रुढ़ कविता ने उनके संपूर्ण अस्तित्व को जैसे जकड़ रखा था। सन् 1955 में महावीर प्रसाद द्विवेदी के द्वारा सरस्वती के प्रकाशन ने इस बदलते हुए वैचारिक आन्दोलन पर अभिजात साहित्य की मोहर लगा दी, इसीलिए हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में और शैलियों में स्वतन्त्रता के पश्चात् एक नयेपन का, एक ताजगी का और एक स्वच्छन्द क्रान्ति का स्वर दिखाई देता है।

बात यदि उपन्यास तक ही की जाए तो यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द भारतीय ग्राम्य संस्कृति के सर्वाधिक सक्षम कथाकार के रुप में सामने आए। प्रेमचन्द ने उत्तर भारतीय ग्राम्य संस्कृति और ग्राम्य जीवन के अछूते प्रसंगों को बड़े ही सहज रुप में कथांकित किया है।

पहला बदलाव कथा-साहित्य में स्वतन्त्रता के बाद आभासित हुआ, जिसमें परम्परा और लीक से हटकर कुछ कहने की चेष्टा की गई। सामाजिक बदलाव में भी साहित्यकार के नजरिए

में एक मोड़ उपस्थित हुआ और सबसे बड़ी बात जो इस दौर में प्रतिष्ठित हुई वह थी राष्ट्रीयता की भावना। स्वतन्त्रता के पहले ही सम्पूर्ण देश में राष्ट्र-भावना का एक उन्माद-सा फैल गया था, जिसने पद्य और गद्य दोनों ही विधाओं के कृतित्व को प्रभावित किया था। बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर जैसे स्थापित कथाकारों ने अपने कृतित्व में इन भावों को व्यक्त किया, जो साहित्यकार इस राष्ट्रीय उदात्त भावना से कुछ अलग रहने के प्रयास में भी रहे, उन पर भी पाश्चात्य् लेखन के बदलते हुए प्रतिमानों का प्रभाव देखा जा सकता है। सामाजिकता, मनोवैज्ञानिकता और वैचारिक बदलाव के कथ्य, बदलते हुए परिवेश एवम् मूल्यों का आंकलन इन लोगों ने अपनी तरह से प्रस्तुत किया।

साठोत्तर कथा-साहित्य में राष्ट्रीय उन्माद जैसी बात नहीं थी, किन्तु फिर भी कृष्णचन्दर, बलराम, श्रीराम शर्मा जैसे कथाकारों ने स्वतंत्रता से उत्पन्न बॅटवारे की स्थिति तथा हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में उत्पीडित पारिवारिक विषमताओं का लेखा-जोखा अवश्य दिया है। इनमें बहुत कुछ पुनरावर्तित कथ्य भी देखे जा सकते हैं।

साठोत्तर कथा-साहित्य में कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, नचिकेता आदि कथाकारों ने कुछ प्रयोगधर्मी रचनाएँ भी प्रस्तुत कीं। विशेष रुप से प्रतीकात्मक रुपकों के माध्यम से सामाजिक विषमताओं को कथांकित किया। इस प्रसंग में मोहन राकेश और धर्मवीर भारती की एकांकियाँ और कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर काल से ऐतिहासिक कथा-साहित्य में एकांकीकार के रुप में स्थापित रामकुमार वर्मा ने भी कुछ विशिष्ट एकांकियों के माध्यम से अपना स्थान नीयत किया। ऐतिहासिक कथा-भूमि पर स्थापित पात्रों को लेकर प्रासंगिक सन्दर्भो के साथ उन्होंने अपनी बात कही। साठोत्तर कथा-साहित्य में कहानी और उपन्यासों को लेकर विशद् चर्चाएँ हो चुकी हैं। यहाँ हमारा अभिप्रेत ऐतिहासिक उपन्यासों को लेकर के है। इतिहास से सम्बद्ध कथाओं को विधाओं में कथांकित करने वाले साहित्यकारों में उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, कन्हैयालाल माणिकलाल

मुन्शी, आचार्य चतुरसेन, वृन्दावनलाल वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि ने पृष्ठभूमि के रुप में विपुल साहित्य सृष्ट किया था। वाल्मीकि त्रिपाठी इस धारा के अगले पड़ाव से जुड़ते हैं। जहाँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर कथा-सृजन का प्रभाव कुछ धीमा पड़ गया था। ऐतिहासिक कथा-सृष्टा के मन में एक उदात्तभाव, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गरिमा और आत्म-सम्मान को व्यक्त करने का रहता है। उनका अभिप्रेत होता है कि वे अपने पाठकों को अतीत के गौरव से जोड़े रखे। पूर्वजों के विशिष्ट प्रदान की ओर उनका ध्यान आकर्षित हो और अपनी वरिष्ठ परम्परित, सांस्कृतिक गरिमा से वे जुड़े रहे। इतिहास के प्रोज्जवल प्रसंग उनका मार्गदर्शन करें, और पाठक में राष्ट्रीय भावना के साथ स्वाभिमान, दया, करुणा, ममता, क्षमा, उदारता, परोपकार, श्रेय, प्रेम, आत्मीयता जैसे उदात्तभाव विकसित करें। त्रिपाठी जी की ऐतिहासिक औपन्यासिक कृतियों में मूल रुप से यही श्रेष्ठ भावना केन्द्रीभूत है। कथाकार के कृतित्व के अध्ययन के सन्दर्भ में यह तथ्य अन्यत्र स्पष्ट किया जा रहा है, कि वे कथा लेखक अपने औपन्यासिक सृजन में कहीं भी पूर्वाग्रही नहीं रहे हैं। ऐतिहासिक औपन्यासिक कृत्यों के अतिरिक्त सामाजिक राजनैतिक एवम् सांस्कृतिक परिवेश के विभिन्न आयामों को लेकर भी त्रिपाठी जी ने उपन्यास रचे हैं।

वाल्मीकि त्रिपाठी के सामाजिक उपन्यासों में भारतीय संयुक्त परिवार के सद्गृहस्थों की एक सामान्य और सहज छवि स्थापित होती है, जहाँ अनेक प्रकार की समस्याएँ और उनके यथोचित समाधान संलग्न किए गए हैं। आवास की कमी, साधनों और उपकरणों की कमी, रोटी-कपड़े की समस्याएँ, धनाभाव के कारण, घरेलू झगड़े, अनेक प्रकार की विषम परिस्थितियाँ व समाधान, परिवार की विसंगतियों में बड़े-बूढ़ों का हस्तक्षेप, पीढ़ियों के स्थगित अन्तराल, दृष्टिभेद, वदलते मूल्यों के प्रति अलग-अलग नजरिया, सह-अस्तित्व का सुखद पक्ष और स्वार्थवश छोटे-छोटे टकराव आदि के परिदृश्य उनके सामाजिक उपन्यासों में यत्र-तत्र अनुभव किए जा सकते हैं।

वाल्मीकि त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुशीलन से पूर्व यदि उनके सामाजिक या सांस्कृतिक उपन्यासों पर नजर डाली जाए तो स्पष्ट हो जाता है, कि कथाकार आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से सहमत है, वह सही वक्त पर सत्य को उद्घाटित करता है, और ईमानदारी के साथ

बदलते हुए मूल्यों को स्वीकार कर समय के साथ चलने को व्यग्र रहता है। कथाकार की यही रचना-धर्मिता तथा उसकी ईमानदार छवि को ऐतिहासिक उपन्यासों में भी देखा जा सकता है, जहाँ कथाकार विषय और कथ्य दोनों के प्रति ईमानदार नजर आता है। शुष्क ऐतिहासिक प्रसंगों को कथाकार ने कल्पना के संस्पर्श से और भी रंगीन कर दिया है। इससे कथा रोचक तो बनी ही है, साथ ही उसकी प्रासंगिक अर्थवत्ता भी सामने आ जाती है। वाल्मीकि त्रिपाठी ने जो ऐतिहासिक उपन्यास रचे हैं, उनमें केवल इतिहास का मात्र दर्शन ही नहीं है, वरन् एक प्रेरणा, एक प्रोत्साहन, एक लगाव और एक सांस्कृतिक पहचान भी इनके द्वारा उभरती है, जो कथ्य को प्रासंगिक सार्थकता से जोड़ते हैं। वाल्मीकि त्रिपाठी के उपन्यास इस सन्दर्भ में लोक से हटकर कुछ नए अभियानों के साथ जुड़कर सामने आते हैं।

वाल्मीकि त्रिपाठी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में केवल ऐतिह्य कथ्यों को ही सतही तौर पर लिपिबद्ध नहीं किया, वरन् इन उपन्यासों में तत्कालीन धार्मिक चेतना, आर्थिक युग चेतना, राजनैतिक युग चेतना तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के स्वरुप भी संस्पर्शित हुए हैं। वैसे, ये तथ्य उनकी समस्त औपन्यासिक कृतियों में परिलक्षित होते हैं। विशेष करके उनके सामाजिक उपन्यासों में कथानक और पात्रों के माध्यम से यह तथ्य उभरे हैं, उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भी सन्निहित कथ्य प्रासंगिक बनकर आधुनिक युग-चेतना को प्रभावित करते हैं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में जहाँदारशाह, विकलांग, प्रजाप्रिय प्रजेश, सत्ता और संघर्ष, राज्याभिषेक, जय-विजय, दुरभि-संधि, एक और बेगम, महाराज तथा सम्राट अशोक विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनके द्वारा वर्ण्य की प्रासंगिकता उपन्यास को सार्थकता प्रदान करती है।

रचनाकार का यह नैतिक दायित्व है, कि वह समाज सापेक्ष रहकर युग-धर्मिता का निर्वाह करता हुआ अपने सृजन के द्वारा सम-सामयिकी परिस्थितियों का सामना करें और निर्णीत आदेश भी समुपस्थित करे। कृतिकार का साहित्यिक प्रयास समाज से संश्लिष्ट होना चाहिए क्योंकि रचनाकार समाज का एक अविभाज्य अंग है। वह अपने ईर्द-गिर्द जिन सामाजिक गतिविधियों का अनुभव करता है उन्हें अपने कृतित्व में समाहित करता है। धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक,

सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि अनेक स्तरों पर वह अपने मूल्यों का निर्धारण करता है, उसका स्वयं का विश्लेषण वैयक्तिक होते हुए भी समष्टिगत चेतना से जुड़ा होता है। वाल्मीकि त्रिपाठी के अधिकांश उपन्यास इस तथ्य को उद्घाटित करते हैं।

वाल्मीकि त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रासंगिकता की ध्वनि के साथ-साथ सम्प्रेषणीयता भी अत्यधिक मुखर रहती है, जिससे पाठक सहज ही कथ्य को आत्मसात् कर लेता है। रचनाकार की सम्वेदना इतनी प्रबल और सशक्त होती है, कि वह समष्टिगत सम्वेदना को व्यक्तिगत स्तर पर अनुभव करता हुआ अपने मानक-मूल्यों के तहत उसे कथांकित करता है, वह सर्वलोक हितकारी और सर्वहित मांगल्यकारी मूल्यों के तहत अपनी नीतियाँ निर्धारित करता है। साहित्यकार की यह मानवीय दृष्टि यूँ तो अखण्डित होती ही है, किन्तु रचना के माध्यम से वह विविध विस्तार लेकर अनेक रुपों में मुखरित होती है। डॉ. त्रिपाठी का मानना है कि "सामाजिक सम्वेदना की अनुभूति ही रचनाकार की वह दृष्टि विशेष होती है, जो विविध रुपधारिणी रचनाओं के माध्यम से प्रकट होती है। इस दृष्टि विशेष से समाज को जो दिशा दृष्टि प्राप्त होती है, वही रचनाकार को कालजयी बनाती है। जिस रचनाकार की रचनात्मक दृष्टि जितनी ही पैनी और गहन होती है, उसकी साहित्यिक यात्रा उतनी ही दूरगामी और दीर्घकालीन होती है। जैसे संपूर्ण सृष्टि की मूल आत्मा एक है, किन्तु वह प्रकट इतने अधिक रुपों में होती है कि प्राकट्य रुपों के माध्यम से मूल आत्मा को पहचान पाना कठिन हो जाता है। कदाचित् इसीलिए आत्मा को जानने और समझने का कितना ही साहित्यिक-असाहित्यिक प्रयास किया गया हो, किन्तु जानने का विश्वसनीय दावा आज तक सम्भव नहीं हो सका है। इसी सत्य के निकट होता है रचनाकार। वह अपने अनुभूत सत्य को मानव सत्य के रुप में प्रकट करता है, जिसे सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक रुपों में देखा-परखा जा सकता है।"[4]

डॉ. त्रिपाठी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से मनुष्य में ऐसी जिजिविषा पैदा की है, जो अपने अधिकारों की जंग जीवन भर लड़ने के लिए उद्दत हो जाता है, टूट जाता है

लेकिन झुकता नहीं, मिट जाता है,लेकिन अवनत नहीं होता, वह इतिहास के पृष्ठों पर अपने संघर्ष की गाथा को रक्तांकित करता है, और स्वयं इसी युद्ध में एक वीर योद्धा की तरह संघर्षरत रहकर अपने अनन्त शौर्य का एवम् दर्प का प्रदर्शन करता है। मानव समाज वैसे भी अन्तर्विरोधी मनोविकारों का एक ऐसा केन्द्र है, जहाँ संवादों में विवाद और विवादों में टकराव की भूमिका पल्लवित होती रही है, यह व्यक्तिकरण कभी संश्लिष्ट रुप में तो कभी वैयक्तिक रुप में उजागर हुआ है। डॉ. त्रिपाठी कहते हैं कि - "यों तो एक समस्या विशेष ही रचनाकार को रचनात्मक सृष्टि के लिए अनुप्रेरित करती है किन्तु समस्या वैयक्तिक हो या निर्वैयक्तिक कभी नितान्त अकेली नहीं होती, बल्कि ज्ञात-अज्ञात रुप में अनेक समस्याएँ उससे जुड़ी होती है। हाँ, प्रमुख रुप से समस्या विशेष इसलिए प्रतीत होती है, क्योंकि वह सर्वाधिक ध्यानाकर्षण में सफल होती है। रचनाकार जब किसी समस्या विशेष पर ध्यान केन्द्रित करता है तो उससे संबंधित अन्यान्य समस्याएँ भी अछूती नहीं रह पाती हैं, जिन्हें वैयक्तिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक आदि रुपों में माना जाता है।"[5]

कथा-साहित्य की सृजना के सम्बन्ध में वाल्मीकि त्रिपाठी एक अप्रतिम प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों से इत्तर नाटक, एकांकी, कहानी, संस्मरण तथा लेखादि रचकर अपनी बहुमुखी कारयत्री प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी औपन्यासिक कृतियों में ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अनेक सन्दर्भों को उकेरा गया है। इनकी प्रमुख तथा विशिष्ट कथाकृतियों के नाम इस प्रकार हैं :-

डॉ. त्रिपाठी के द्वारा विरचित उपन्यास साहित्य को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - ऐतिहासिक और सामाजिक। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में -(1)जहाँदारशाह, (2)विकलांग, (3) प्रजाप्रिय प्रजेश (4) सत्ता और संघर्ष (5) राज्याभिषेक (6) जय-विजय (7) दुरभि-सन्धि (8) एक और बेगम (9) महाराज (10) सम्राट अशोक आदि विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। और उनके सामाजिक उपन्यासों में - (1) फिलहाल (2)शून्य (3)रिक्शावाले की डायरी (4)उपेक्षिता (5)शिकायत (6)जिएं तो जिएं कैसे (7)भ्रष्टाचार (8)दम्पति (9)पितामह

(10)मैं क्यों नहीं लिख सका (11)जी हाँ, आप भी उपन्यास लिख सकते हैं (12)कौन किसका क्या (13)ऐसी भी हैं (14)ऐसे हैं मेरे (15)बड़ों की बात आदि विशेष तौर पर लिखे गए हैं।

वैसे तो हमारा विवेच्य डॉ. त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यासों का विवेचन करना ही है, किन्तु इस तथ्य से नकारा नहीं जा सकता कि जब तक उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य का मनन न कर लिया जाए तब तक कुछेक उपन्यासों का अध्ययन करके ही कथाकार के प्रति कोई निश्चित धारणा स्थापित नहीं की जा सकती। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों से इत्तर अन्य कथाकृतियों का संक्षिप्त विवरण भी ज्ञातव्य है।

सन्दर्भ – सूची

1. देखिए – भारतेन्दु समग्र – हेमन्त शर्मा – हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी
2. देखिए – वही – वही – – पृष्ठ 283
3. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ. कृष्णलाल हंस (ग्रन्थम – लालबाग – कानपुर)
4. जहाँदारशाह (भूमिका से) – डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी
5. वही